समयसार, श्लोक छठवाँ — हिन्दी चलेगा आज, छठवाँ है न छठवाँ? श्लोक बोलिये फिर से —

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः पृथक् ।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥

इसमें आचार्य की पुकार है। देखो तो सही! आहाहा! **इस आत्मा को 'अस्य'** अर्थात् इस आत्मा को; यह शुद्ध चैतन्यघन पूर्ण स्वरूप जो 'अस्य' आत्मा को — ऐसा।

अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना... अन्य पदार्थ — छह द्रव्य, देव-शास्त्र-गुरु, उनकी श्रद्धा आदि का राग, उससे भिन्न श्रद्धान करना। इस आत्मा को अन्य द्रव्यों से भिन्न, अपने स्वभाव से अभिन्न... स्वभाव से अभिन्न... सूक्ष्म बात है, भाई!

श्रोता : फरमाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुख होकर उसका श्रद्धान; उसको देखना अर्थात् **श्रद्धान करना ही नियम से सम्यग्दर्शन है।** यह निश्चय से सत्य सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी कहा जाता है। आहाहा! इस सम्यग्दर्शन में, जितने आत्मा में गुण है, संख्या से अनन्त... अनन्तानन्त... अनन्तानन्त.... अनन्तानन्त; संख्या से जिसका अन्त नहीं है - ऐसे जो अनन्त अनन्त गुण हैं... आहाहा! ऐसे आत्मा का श्रद्धान करना, तो जितनी श्रद्धा जहाँ हुई, तो जितनी संख्या में अनन्त गुण है, उनका एक अंश व्यक्तपने सम्यग्दर्शन में वेदन में आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहाहा!

अभी तो चौथा गुणस्थान कहा। पाँचवें और छठवें (गुणस्थान) की व्याख्या तो बहुत कठिन है। आहाहा! यह तो प्रथम में प्रथम भगवान आत्मा, अनन्त गुण का अपार सागर, उसको अन्य द्रव्य और अन्य द्रव्य के भाव से भिन्न देखना अथवा श्रद्धान करना, वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन है, उसे दर्शन कहा जाता है। आहाहा! और जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ उसका ज्ञान और व्रत, चारित्र, तप - ये सब बाल — अज्ञानतप - बालव्रत है। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बात है, भाई!

यह कैसा है आत्मा? **''अपने गुण पर्याय में व्याप्त रहनेवाला (आत्मा) है''** क्या कहते हैं? कि जो वस्तु आत्मा है, ये अपना गुण सहभावी और क्रमवर्ती उसकी पर्याय में व्याप्त है। सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? ये बाद में कहेंगे। यहाँ तो आत्मा कैसा है कि अपना-अनन्त गुण में व्याप्त है, रहता है और उसकी विकृत अथवा अविकृत अवस्था में वह आत्मा व्याप्त है, पसरा है। अरे! ऐसी व्याख्या अब! आहाहा...!

भगवान आत्मा ये, परद्रव्य से भिन्न। शरीर, कर्म, कर्म का अनुभाग-भाव उससे तो भिन्न, परन्तु अपने अनन्त गुण है और गुण की वर्तमान (पर्याय) क्रमवर्ती विकारी या

अविकारी... अविकारी का अर्थ? अस्तित्वगुण की पर्याय अविकारी है, सब गुण की पर्याय विकारी है — ऐसा नहीं है। यहाँ अज्ञान में भी, हाँ! समझ में आया? ऐसी बात है। अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुण है, उसकी पर्याय तो निर्मल ही होती है परन्तु जो दूसरे गुण है, उसमें कितने गुण की पर्याय विकृत भी होती है। श्रद्धागुण की, चारित्रगुण की, आनन्दगुण की, प्रदेशत्व-गुण की ऐसे गुण की; कर्ता-कर्म, करण, सम्प्रदान गुण की विकृत अवस्था होती है। उस विकृत अवस्था और गुण में आत्मा व्यापक है, उसमें रहा हुआ है; परद्रव्य में नहीं, परद्रव्य के भाव में नही। यहाँ परद्रव्य का भाव अर्थात् जीव के विकारी (भाव) वे यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो परद्रव्य — कर्म, शरीर, वाणी आदि वस्तु और उसका भाव अर्थात् शक्ति, उसकी जो गुण-पर्याय, उससे भगवान आत्मा रहित है। वह सम्यग्दर्शन का विषय है या नहीं? — यह बात अभी नहीं है। पहली बात तो यह है — वस्तु कैसी है-पूरे प्रमाण का विषय — निश्चय का विषय और व्यवहार का विषय। विषय शब्द से त्रिकाली द्रव्य निश्चय का विषय है और वर्तमान पर्याय विकृत-अविकृत अवस्था है, वह व्यवहार का विषय है। दो मिलकर प्रमाण का विषय है। आहाहाहा!

तो कहते हैं कि '**अपने गुण-पर्याय में व्याप्त रहनेवाला है**'..... इस पर्याय में विकृत भी लेना। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ आदि का भाव है, यह विकृत अवस्था है, उसमें भी आत्मा व्याप्त-उसमें रहा हुआ है। किसी परद्रव्य में रहा हुआ है — ऐसा नहीं और परद्रव्य उसमें आया है — ऐसा नहीं। आहाहाहा! यह भगवान आत्मा, वस्तु से त्रिकाल शुद्ध होने पर भी, उसके गुण भी पूर्ण शुद्ध होने पर भी, उसकी पर्याय में अपूर्णता और विकृत अवस्था जो है, वह भी आत्मा उसमें व्यापक है, आत्मा उसमें व्याप्त अर्थात् उसमें पसरा है। उसका वह विस्तार है। धन्नालालजी! द्रव्य-गुण और पर्याय.... द्रव्य जो वस्तु है, वह अपने गुण और पर्याय में रहती है। परद्रव्य के भाव और परद्रव्य में वह नहीं रहती। परद्रव्य के भाव वह विकारी यहाँ नहीं लेना। अपना विकारी भाव, वह नहीं। कर्म और कर्म का अनुभाग जो जड़ है, उससे रहित आत्मा है, परन्तु अपनी पर्याय में जो विकृत अवस्था है, उससे तो वह सहित - व्याप्त है। समझ में आया? क्या कहा?

श्रोता : एक बार आप कहते हो पर्याय का इसमें अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या ? वह तो जब शुद्धनय का — द्रव्य का विषय बताना हो तब। यह तो अभी कहेगा न!

वस्तु जो है अनादि से, अपने गुण-पर्याय में व्याप्त है, अनादि से है। अब इतना होने पर भी.... समझ में आया ? भाषा तो सादी है, बापू! वस्तु तो कोई अलौकिक... सम्यग्दर्शन का विषय क्या ? और आत्मा किसमें रहता है ? आहाहा! अनादि से कोई शरीर में आत्मा रहा है, या कर्म में रहा है, या स्त्री-कुटुम्ब-परिवार में रहा है, या देव-गुरु-शास्त्र में रहा है — ऐसा है नहीं। अनादि से रहा है तो अपने जो अनन्त गुण हैं और उसकी वर्तमान में विकृत और अविकृत अवस्था है, उसमें यह आत्मा रहा है। समझ में आया ? यह प्रमाण का विषय बताया। अब उसमें सम्यग्दर्शन का विषय क्या है ? — यह बाद में कहेंगे। आहाहा! आ... रे .... क्या हो ? मूल तत्त्व की बात में ही बदलाव हो गया और इसलिए लोगों को व्रत करो, तप करो, और यह प्रतिमा ले लो.... धूल है। आहाहा!

श्रोता : वह तो काम की चीज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम की चीज है न, भटकने की। यह जो शुभभाव है, वह तो संसार है, परिभ्रमण का कारण है, परिभ्रमणस्वरूप है। यह कहा न! आत्मा व्याप्त है, विकारीभाव में! वह परिभ्रमणस्वरूप है। आहाहा! वह परिभ्रमण कर्म के कारण करते हैं — ऐसा है नहीं। आहाहाहा! यहाँ तो भगवान आचार्य, अपनी बात करते-करते यह बात करते हैं कि हमारा आत्मा जो है, वह अपने गुण जो सहवर्ती अनन्त गुण हैं, उसमें तो है द्रव्य, परन्तु अपनी पर्याय में जितना मिथ्यात्वभाव है, रागभाव है, द्वेषभाव है, काम-क्रोधभाव है, पुण्य-पापभाव है, वह उसकी पर्याय में है और द्रव्य उसमें व्यापक (फैला) है, किसी कर्म से विकारी अवस्था हुई है — ऐसा नहीं है। आहाहा.... ! समझ में आया ?

अपने गुण-पर्यायों में, अपनी पर्याय में, विकारी भी अपनी पर्याय है — ऐसा कहते हैं यहाँ। ये विकारी पर्याय कोई कर्म की नहीं है। समझ में आया ? आहाहाहा! अरे! मिथ्यात्व भाव है, यह भी अपनी पर्याय है। मिथ्या श्रद्धा है, यह भी अपनी पर्याय है।

श्रोता : कर्मजन्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मजन्य बिल्कुल नहीं। यह तो निमित्त से कथन करना हो। ये तो निमित्त के आश्रय से उत्पन्न हुआ इतना, परन्तु है तो यह अपनी पर्याय में, अपने कारण से।

श्रोता : औदयिक कहते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : औदयिक अर्थात् अपनी पर्याय, औदयिकभाव, यह अपनी पर्याय है, जीवतत्त्व है। तत्त्वार्थसूत्र में आया नहीं ? पहले अध्याय में। जीव तत्त्व है। यह मिथ्यात्व, पुण्य, पाप से जीवतत्त्व है। औदयिकभाव यह जीवतत्त्व है। पहले अध्याय में आता है न ? यह तो पीछे सम्यग्दर्शन बताना हो, शुद्धनय का विषय बताना हो तो पीछे (कही) बात। पहले तो इतने में राग में, विकार में मिथ्यात्व में, पुण्य-पाप में आत्मा ही कर्ता है और व्याप्त है। ऐसा भी सिद्ध न करे और विकार पर से होता है तो अपनी पर्याय का अस्तित्व की भी उसको खबर नहीं। आहाहाहा *! गहरी बात है भाई! यह तो सम्यग्दर्शन हुये पहले, भगवान आत्मा!* चारों तरफ भले द्रव्य पड़ा हो, कर्म, शरीर, वाणी, परन्तु यह आत्मा जो है, यह तो अपने गुण-पर्याय में ही व्याप्त है, बस ! आहाहा ! समझ में आया ? मिथ्यात्व में भी आत्मा व्याप्त है। यह दर्शनमोह कर्म के कारण से मिथ्यात्व है — ऐसा है नहीं। आहाहा ! राग और द्वेष का परिणाम जो आत्मा में हुआ, यह चारित्रगुण की विपरीत अवस्था अपने में है। समझ में आया ? ऐसे आत्मा को ख्याल में पूर्ण लेकर पीछे सम्यग्दर्शन का विषय क्या है — यह बताना है अब। आहाहा ! आहाहा ! क्योंकि सम्यग्दर्शन का विषय एक नय का विषय है और यह गुण-पर्याय में व्याप्त द्रव्य, वह प्रमाण का — दो नय का विषय है, प्रमाण का विषय है। क्या कहते हैं यह ?

प्रमाण अर्थात् अर्थात् दो भाग को लक्ष्य में ले, उसका नाम प्रमाण और एक भाग को लक्ष्य में ले, उसका नाम नय। कहो, ऐसी तो सादी भाषा है। आहाहा ! पाटनीजी ! ऐसी बातें हैं यह ! आहाहा ! यहाँ तो अभी आचार्य.... यह जो तत्त्व - वस्तु जो आत्मा है, वह पर रजकण — कर्म, शरीर, वाणी, मन में उनके अन्दर बीच में भले दिखायी दे परन्तु वह उनमें है नहीं और उनसे विकार हुआ — ऐसा है नहीं। आहाहा !

द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, गुण अर्थात् त्रिकाली स्वभाव, और पर्याय अर्थात्

वर्तमान विकृत और अविकृत अवस्था। इन सबमें आत्मा व्यापक है; उस विकार में कोई कर्म व्यापक है — ऐसा है नहीं। समझ में आया?

श्रोता : अब नय की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात बाद में। आहा! पहले से ऐसा विचार करे कि विकार है, वह कर्म से हुआ है तो पहली पर्याय की अस्तित्व की चीज का पता नहीं है। समझ में आया? क्या करें, हमारे कर्म का ऐसा उदय आता है तो विकार होता है (— ऐसा अज्ञानी मानता है)। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' जड़ कर्म, वह बेचारा अज्ञान-जड़ है, उसका क्या! वह तो अजीव द्रव्य में उसका अस्तित्व है। उस अजीव द्रव्य का अस्तित्व, चैतन्य की विकारी पर्याय में वह कर्म से होता है? बिल्कुल नहीं। आहाहाहा! धन्नालालजी! यह तो है अन्दर, देखो न, अन्दर! उसका तो अर्थ होता है। यह सब हमारे सेठ नहीं आये? मोहनलालजी और बाबूलालजी को सब अन्दर है या नहीं परन्तु अन्दर? पृष्ठ में लिखा है या नहीं?

श्रोता : अन्दर लिखा है परन्तु अन्दर में तो हमें समझ में नहीं आता, आप कहो तब मुश्किल से समझ में आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा....हा...! कहते हैं कि यह आत्मा.... पहले कहा था न कि इस **अस्य आत्मा को परद्रव्य से पृथक् देखना, यह निश्चय से सम्यग्दर्शन है** इतनी बात पहले की। अब यह आत्मा है, यह किसमें व्याप्त है? कितनी शक्ति में और पर्याय में है? अपने गुण-पर्याय में व्याप्त रहनेवाला है। आहाहा! कभी आत्मा कर्म में गया नहीं, शरीर में गया नहीं, शरीररूप हुआ — अनन्त बार शरीर का (संयोग हुआ), परन्तु आत्मा शरीर की पर्यायरूप कभी नहीं हुआ। आहाहाहा! अनन्त कर्म के रजकण के मध्य में प्रभु है, परन्तु वह आत्मा कर्म की पर्यायरूप कभी नहीं हुआ, और वह कर्म की पर्याय आत्मा के साथ में है तो कर्म की पर्याय से विकृत अवस्था आत्मा में होती है — ऐसा कभी नहीं होता। आहाहाहा!

बाबूलालजी! वहाँ तुम्हारे कलकत्ता में कहीं नहीं मिलता, पैसे में — धूल में भी कहीं नहीं मिलता। इसलिए कहते हैं न, हम यहाँ आये हैं न कलकत्ता से। आहाहाहा!

कहाँ गये छोटालालजी! आहाहा! समझ में आये ऐसा है न भगवान! आहाहा! आहाहा! परमात्मा कहते है, वह सन्त कहते हैं। सन्त तो आढ़तिया हैं, कि प्रभु ऐसा कहते हैं और ऐसा है कि यह आत्मा जो वस्तु है, द्रव्यरूप पदार्थ (है) तो उसमें जो अनन्त गुण है, ये आत्मा में है और पर्याय में विकृत अवस्था है, वह भी आत्मा उसमें व्यापक है, कोई परद्रव्य व्यापक है, और विकार है — ऐसा है नहीं। आहाहाहा! समझ में आया?

अपने गुण पर्याय, अपने गुण - अपने पर्याय-मिथ्यात्व राग, द्वेष, अज्ञान, काम-क्रोध, विषय वासना, ये अपनी पर्याय में है, अपनी पर्याय है। आहाहा! कोई परद्रव्य की पर्याय है, और परद्रव्य से हुई है — ऐसा नहीं, इतना तो पहले सिद्ध किया। आहाहा! **और,** ऐसे होने पर भी, ऐसा रहनेवाला होने पर भी, प्रमाण का विषय में गुण ने पर्याय में रहनेवाला होने पर भी **शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है....** आहाहा!

यहाँ त्रिकालीनय.... वह तो दो नय का प्रमाण का विषय सिद्ध किया। अब जो शुद्धनय है, वह तो एकाकार स्वरूप त्रिकाल एकरूप है, उसको बताता हैं। आहाहा! गुण का भेद और पर्याय का भेद वह नहीं बताता। यह गुण का भेद और पर्याय का भेद व्यवहारनय का विषय था तो उसे प्रमाण का विषय बताया। समझ में आया? ऐसी बातें अब! बनियों को फुर्सत नहीं मिलती, धन्धे के कारण-पाप के कारण पूरे दिन। सेठ यह तुम्हारे क्या कहलाता है।

श्रोता : इसमें बनिये बहुत आयेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिये ही आनेवाले हैं न सब! उसमें ऐसा लिखा है न भाई ने अभी जैनधर्म बनियों को — व्यवसायवालों को आ गया है। व्यवसाय पूरे दिन धन्धा, आहाहा! पाप, स्त्री, पुत्र, परिवार, दवाखाना, इंजैक्शन, यह दवा ली और यह किया धूल... धूल...। आहाहा!

श्रोता : बीमार पड़े तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बीमार पड़ता है।

श्रोता : शरीर (बीमार पड़ता है।)

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर, वह तो जड़ है और जड़ की अवस्था में आत्मा नहीं है। आत्मा में रोग है, वह तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष का रोग है परन्तु उस रोग में भी आत्मा व्यापक है। समझ में आया? आहाहाहा! आहाहाहा!

किसी ईश्वर ने इसे विकार कराया है या अन्दर में कर्म का बहुत जोर आया; इसलिए विकार करना पड़ा है — ऐसा नहीं है। उस काल में इसकी पर्याय का स्वरूप ही विकृत हुआ है, इस प्रकार इसका व्यापक आत्मा उसमें रहा हुआ है। आहाहाहा!

छठवाँ श्लोक..... हमारे जिनेश्वरदासजी (ने कहा) कि भाई आये हैं न, इनके लिए आज हिन्दी में लो। कहा, अब मंगलवार से शुरु होगा न अपने शिक्षण-शिविर। आहाहा! भाव तो है वह है। हिन्दी में आवे परन्तु वस्तु तो जो है, वही है न भैया। आहाहा!

पहले ज्ञान में आत्मा द्रव्य, गुण और पर्यायस्वरूप है — ऐसा पहले उसे ज्ञान होना चाहिए। वह ज्ञान सम्यक् नहीं परन्तु उस ज्ञान का अंग पहले प्रगट होना चाहिए। आहाहा! उसमें आया है न! ऐसा कि भेद बताना है, वह ज्ञान का अंग है, उसमें वह ज्ञान का अंग उस प्रकार का सच्चा होता है, सम्यग्ज्ञान नहीं परन्तु ज्ञान अन्दर.... दर्शन, ज्ञान, चारित्र वह आत्मा — ऐसा बतलाया परन्तु उसमें एक ज्ञान का अंग वहाँ सिद्ध होता है, एक व्यवहार का.... कलश-टीका में है। समझ में आया? इसमें ही है, पाँचवें कलश में.... कलश-टीका है न देखो! लो यही निकला, पाँचवाँ कलश है न! 'उसी प्रकार गुण-गुणीरूप भेद कथन ज्ञान उपजने का एक अंग है' पहले इस प्रकार का ज्ञान होता है, उस सम्यग्ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। यह गुण-गुणी का भेद कथन, व्यवहारनय.... आहाहा! गुण-गुणीरूप भेद कथन वह ज्ञान उपजने का एक अंग है, जीव का लक्षण चेतना, इतना कहने पर पुद्गल आदि अचेतन द्रव्यों से भिन्नपने की प्रतीति उत्पन्न होती है; इसलिए जब अनुभव होता है, तब तक गुण-गुणीरूप भेदकथन ज्ञान का अंग है, जानने में इतना आता है। फिर अनुभव तो उसको छोड़कर होता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! वीतरागमार्ग! जिनेश्वर-परमेश्वरमार्ग।

श्रोता : कलश-टीका में व्याप्त का क्या अर्थ किया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्याप्त ही है उसमें। यह तो छठवें की बात हुई, वह तो

पाँचवें की बात है, वह तो पहले आ गया है न। अस्तु..... यह तो लम्बी व्याख्या है। यहाँ तो पहले समकिती की व्याख्या की है, उसमें आ गया है। शुद्ध जीव का अनुभव करने पर तीनों ही है। देखा? क्या कहा? यहाँ तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ही पर्यायनय का विषय है, वह है; वैसे विकार भी है — ऐसा ले लेना।

परन्तु शुद्धनय से देखने पर — निर्विकल्प वस्तुमात्र को देखने पर शुद्धपना उसरूप है। वस्तु भी वही है न? वस्तुस्थिति है न? **एतत् नियमात सम्यग्दर्शन** व्याप्तु.... व्याप्तु.... शब्द इसमें है न, लम्बा है न अर्थात् **एतत् नियमात सम्यग्दर्शन।**

श्रोता : अन्तिम चार लाईनें लीजिये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ है, देखो न! कहा न! **संसार अवस्था में जीवद्रव्य नवतत्त्वरूप परिणमा है....** यह भाषा की है। यह तो पूर्व में पाँचवें में आ गया है। वह तो कहा था पहले, उसमें आ गया है। यह नौ तत्त्वरूप परिणमा है, यह मिथ्यात्वभाव इसमें है। आहाहा! सच्चे संवर-निर्जरा की यहाँ बात नहीं है परन्तु अनादि से जीव-अजीव, पुण्य-पाप आदि और आस्रव का अंश नहीं, उतना उस गुणस्थान में पहले उतना उसे व्यवहार से संवर गिना, यहाँ कर्म का अंश खिरता है, उसे निर्जरा व्यवहार से गिनी और बंध का एक अंश कम होवे, उसे मोक्ष गिना, द्रव्य.... द्रव्य इन नौ तत्त्वरूप मिथ्यादृष्टि में परिणमित हुआ है। समझ में आया?

देखो! यहाँ आया, क्योंकि यह जीव द्रव्य '**द्रव्यांतरेभ्य पृथक्**' ऐसा। ऐसा होने पर भी, द्रव्यस्वभाव की दृष्टि लेनी है, दृष्टि लेना है। आहाहा! तो पहले ये बात सिद्ध की कि परद्रव्य तो निमित्तमात्र है, उसकी कोई चीज की बात नहीं। तेरी चीज जो द्रव्य-गुण जो शुद्ध है और तेरी पर्याय में जो अशुद्धता — आस्रव की पुण्य-पाप की, बंध की जो भावबन्ध है, वह तेरी पर्याय में है और उसमें आत्मा व्यापक है। किसी परद्रव्य के कारण से विकार है और मिथ्यात्व है — ऐसा भाव है नहीं। आहाहाहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! अभी तो यह तो अपने थोड़ा-सा चल गया है। यह तो हमारे भाई के कारण फिर हिन्दी में लिया है। और शुद्धनय.... वह तो उसके अस्तित्व में, द्रव्य में, गुण में, और पर्याय में अस्तित्व में जो है, वह बतलाया।

अब शुद्धनय का विषय क्या है ? आहाहाहा ! प्रमाण के विषय में विकारी पर्याय या पर्याय का निषेध नहीं होता। क्या कहा ? नयचक्र में यह है, कि प्रमाण के विषय में पर्याय का और विकृत अवस्था का निषेध नहीं होता, इसलिए वह प्रमाण पूज्य नहीं है। आहाहा ! और निश्चयनय के विषय में उस पर्याय का निषेध होता है और त्रिकाली द्रव्य का आश्रय होता है; इसलिए निश्चयनय पूज्य है। आहाहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! दूसरे प्रकार से कहें तो जो वस्तु है वह अनादि अपने गुण में तो है ही, परन्तु अनादि उसकी विकृत अवस्था में भी वह आत्मा ही है। उस अवस्था में कोई कर्म आया है और कर्म से (अवस्था) हुई है — ऐसा है नहीं। अत: ऐसी चीज का पहले निर्णय कराकर, अब शुद्धनय का विषय... वह तो दो — द्रव्य और पर्याय — दो का ज्ञान कराया, परन्तु वह प्रमाण तो सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। जरा सूक्ष्म पड़ेगा, क्या कहा ? जो त्रिकाली द्रव्य है और गुण है, पर्याय है, उसका विषय करनेवाला प्रमाण है वह। तो वह प्रमाण है उसमें दो आये, इस कारण वह प्रमाण स्वयं सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। आहाहा ! क्या हो ? क्या कहते हैं ? आहाहा ! पञ्चाध्यायी में है — प्रमाण वह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा ! क्योंकि वहाँ एक नहीं आया, दो आये। अत: दो आये, वह प्रमाण का विषय हो गया, दो आये तो व्यवहारनय का विषय हो गया। प्रमाण, व्यवहारनय का विषय है। आहाहाहा !

भाई ! वीतराग का मार्ग कोई अलौकिक है, अभी तो लोगों में इतनी अधिक गड़बड़ (चलती है)। आहा ! प्रतिमा ले लो और ब्रह्मचर्य और वस्त्र बदल दो। आहाहा ! अकेला अज्ञानभाव है।

श्रोता : बाह्य त्याग तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य त्याग तो अन्दर में अनादि से है उसमें (आत्मा में)। परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का तो तीनों ही काल अभाव है। आहाहा ! आदान-ग्रहण करना और छोड़ना — परद्रव्य के ग्रहण और छोड़ना, उससे तो वह त्रिकाल रहित है। ऐसा गुण तो उसमें त्रिकाल है। छोड़ना अर्थात् नहीं है — ऐसा तो उसमें गुण है। उसको छोड़ना अर्थात् उसका अर्थ यह हुआ कि उसे ग्रहण किया था उसने ऐसा माना। सूक्ष्म बात, बापू !

वीतराग मार्ग! आहाहा! उसमें भी दिगम्बर धर्म और जैनधर्म, उसकी चीज अलौकिक बातें हैं, भाई! आहाहा! दुनिया के पाप के धन्धे में बारह महीने बहुत समय उसका वहाँ जाता है। है? चौबीस घण्टे में बाईस घण्टे पाप में, व्यापार, कमाना, लिखना, और यह और वह.... अब उसमें एक घण्टा कदाचित् सुनने को मिले और सुने तो भी उसे निर्णय करने का समय नहीं मिलता। आहाहा!

(यह तो) ऐरन का चोरी और सुई का दान (जैसी बात है) इस प्रकार बाईस घण्टे-तेईस घण्टे इसमें (पाप में) रहे और एक घण्टे सुनने जाये, वहाँ सुनने को ऐसा मिलता है कि व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो, तपस्या करो, रस छोड़ो, वस्त्र छोड़ दो, एक-दो वस्त्र रखो, रस का परित्याग करो.... लो ऐसी बातें हैं सब!

श्रोता : कितने अधिक परीषह सहन करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी परीषह नहीं है। सम्यक्त्व के बिना परीषह हो ही नहीं सकता। समझ में आया? परीषह में तो सहन करना अर्थात् ज्ञाता-दृष्टारूप से रहना। यह तो सम्यक्त्व होने के बाद उसे ज्ञाता-दृष्टापना रहे, उसका नाम परीषह है। धन्नालालजी! ऐसी बातें हैं, भाई! क्या हो? भाई!

श्रोता : ज्ञाता-दृष्टापने रहना वह परीषह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका नाम परीषह है, वह परीषहजय है। अरे प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा अपने गुण-पर्याय में व्याप्त रहनेवाला है। '**व्याप्तं**' आस्रव, पुण्य-पाप, बन्धभाव उसमें आत्मा रहनेवाला है, आत्मा की पर्याय है और आत्मा उसमें आया है। अनादि से वह नव तत्त्वरूप परिणमन उसका है। आहाहा! नव तत्त्वों में संवर, निर्जरा, मोक्ष वह यहाँ नहीं लेना, द्रव्य, संवर और द्रव्य मोक्ष.... आहाहा!

और '**शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य**' **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित कहा गया है।** अन्तर को देखनेवाला शुद्धनय, जो श्रुतज्ञान का निश्चय अंश, उससे देखने से, वह तो पूर्ण स्वरूप को देखता है। सम्यग्दर्शन का विषय पूर्ण स्वरूप है, और शुद्धनय का विषय ही पूर्ण स्वरूप है। नय, ज्ञान की अपेक्षा से है और समकित, श्रद्धा की अपेक्षा से है।

श्रोता : उसमें अपने को क्या ? अपने को तो धर्म की बात सुननी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात तो वह चलती है।

श्रोता : सम्यग्दर्शन तो हो जाएगा उसमें क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में..... सम्यग्दर्शन वही धर्म की पहली शुरुआत है। (उसके बिना) धर्म कहाँ से आया... धूल में ? प्रतिमा ले ले, दो-पाँच-दस और ग्यारह....।

श्रोता : पन्द्रह होवे तो पन्द्रह ले ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्या ? इसे क्या ? गिनती ही गिनना है न ? वस्तु कहाँ हैं इसके घर में ? आहाहाहा!

श्रोता : हम छोड़ देंगे प्रतिमा।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा छोड़ देगा का अर्थ क्या ? वह तो विकल्प है, उसको छोड़ देगा तो ?

श्रोता : निर्विकल्प होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प होगा, तब छोड़ देगा। आहाहा! वह विकल्प भी आत्मा का आत्मा में व्याप्त है। अब उसे शुद्धनय से देखने से.... प्रमाण का विषय बताकर, पर की कोई अपेक्षा पर्याय में नहीं है — ऐसा बताकर, अब शुद्धनय में कोई भेद की अपेक्षा नहीं है। आहाहाहा! भाई! यह तो तीर्थङ्कर जिनेश्वर देव! आहाहा! जिन्हें एकावतारी इन्द्र तीन ज्ञान के स्वामी, आहाहा! जिन्हें वैमानिक देव में से छूटकर सुनने आवें, वह वाणी कैसी होगी ? भाई! है ?

श्रोता : अलौकिक अद्भुत!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यहाँ लोग कहते हैं दया पालो, व्रत पालो.... अब यह तो भिखारी, कुम्हार भी कहता है।

श्रोता : भीम ग्यारस से नहीं कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : भीम ग्यारस... हमारे यहाँ कहते थे और कहा न। हमारे उमराला

में, उमराला में साठ वर्ष पहले ऐसा रिवाज था, हमारे गाँव का... दूसरे गाँव में भी था कि श्रावण महीने की यह भीम है न ? एकम आवे तो गाँव के जो सेठ हों, वे हमारे नगद सेठ थे, वे दो-चार व्यक्ति इकट्ठे होकर पाँच-पाँच सुपारी लेकर जाते, तेली के पास, तेली-मुसलमान तब यह समझते कि हाँ! इन बनियों का पर्यूषण का महीना आया है, बन्द करना पड़ेगा, तेली घानी नहीं करता। श्रावक शुक्ला एकम् से भाद्र शुक्ला पंचमी तक मुसलमान तेली भी घानी नहीं पेलता था, इतनी महाजन की छाप थी। हमारे गाँव में पाँच हजार की जनसंख्या, उमराला के नगद सेठ थे। पहले तो ठीक था, लोग ठीक थे फिर तो घिस गये। लोग खानदानी थे अभी छह लड़के हैं, हमारे तो सत्तर वर्ष पहले का सब। यह तेली मुसलमान उनके पास जाते चार सेठ.... सावन महीने की एकम, तो वे समझते आज से भाद्र शुक्ल पंचमी तक घानी नहीं पिलेगी। मुसलमान नहीं पेलता, कुम्हार के पास पाँच सुपारी लेकर जाते निम्भाड़ो नहीं करता। श्रावण शुक्ल एकम से भाद्र शुक्ल पंचमी तक निम्भाड़ो.... निम्भाड़ो समझते हो (श्रोता - मिट्टी के बर्तन पकें वह) तन्त्री भी बनियों का पर्यूषण आया है — ऐसा कहे, ऐसा तो लौकिक रीति से गाँव में था और पूरा होने के बाद भी, श्रावण शुक्ल एकम् से भाद्र शुक्ल पंचमी तक बर्तन का पकाना बन्द, घानी बन्द, फिर भी पहले शुरु करेगा वह अधिक पापी है — ऐसा माननेवाले दो-चार दिन आगे-पीछे होते। कोई छटम् को सातम को करता कोई आठम को करता — ऐसा तो मुसलमानों में मानी जाती थी महाजन की बात। वह कहाँ धर्म था ? आहाहा! समझ में आया ? ऐसा तो गाँवों में था। तुम्हारे शहरों की तो हमें कुछ खबर नहीं। नागनिस (गाँव) सबमें था। पता होगा। यह तो हमारे उमराला में इसलिए तो हमको पता है न ? पाँच हजार की आबादी। अब वह बर्तन पकाना बन्द करते, तेली घानी बन्द कर दे, इसलिए वह धर्म है ? वह तो तीव्र पाप.... बनियों का पर्यूषण है, गाँव के सेठ हैं, और इनका हमारे ऊपर प्रबल है, इसलिए अपने को ऐसा नहीं करना, मुसलमान नहीं करता, पैंतीस दिन तक मुसलमान घानी नहीं चलाता। इससे ऐसी तो वह लौकिक लाईन थी।

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं — विकार की दशा, चाहे तो वह शुभ की विकारदशा, दूसरों को नुकसान न करना, हिंसा न करना, यह न करना — ऐसा जो भाव, वह भी

एक विकृत अवस्था है और उसमें आत्मा व्याप्त है। वह विकृत अवस्था किसी ने करायी है — ऐसा नहीं है।

ऐसा आत्मा, द्रव्य-गुण-पर्याय में रहनेवाला होने पर भी, शुद्धनय अर्थात् जो नय का अंश त्रिकाल को विषय करता है, उसे शुद्धनय कहते हैं। एक अखण्ड आत्मा अभेद, जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं, जिसमें पर्याय का भेद नहीं, निर्मल पर्याय का भी जिसके विषय में भेद नहीं.... आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया....** एकरूप निर्णय कराया। आहाहा! एक ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, नित्यभाव, सामान्यभाव, सदृशभाव, एकरूप रहनेवाला त्रिकाली (भाव) वह शुद्धनय का विषय, उसने निर्णय कराया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात। अभी तो यह कलश....

महाप्रभु.... यह वीतराग का मार्ग.... एक-एक श्लोक में दिगम्बर के सन्तों ने गजब का काम किया है। आहाहा! ऐसी बात कहीं नहीं है। आहाहा! परन्तु उसमें जन्म लेनेवाले तुमको भी भान कब था वहाँ?

श्रोता : उसमें जन्में हैं, ऐसा अपने को मानना किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दिगम्बर में जन्मे हैं न ये सब.... नामनिक्षेप है। चिमनभाई! आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने ऐसा कहा... ऐसा कहा कि तेरी दशा में विकृत अवस्था अनादि की है। आस्रव, बन्धभाव, रागादि, पुण्य-पाप, मिथ्यात्व, यह तेरी दशा में है, तू उसमें आया है। किसी कर्म से आया है — ऐसा नहीं। इतनी बात का ज्ञान कराकर... वह सम्यग्ज्ञान नहीं है। उसमें कहा (था), बताया था न कि ज्ञान का अंग... अब सम्यग्ज्ञान कब होता है? त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ ध्रुवस्वरूप, जो शुद्धनय का और सम्यग्दर्शन का विषय है, इस सम्यग्दर्शन ने त्रिकाली को बताया। शुद्धनय ने त्रिकाली को जाना। आहाहा!

श्रोता : शुद्धता त्रिकाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल शुद्ध एक वस्तु। वर्तमान भले त्रिकाल न लो तो वर्तमान में ध्रुवपना एकरूप, वह उसका विषय है। यह तो शास्त्र भाषा है। आहाहा! जिसमें —

सम्यग्दर्शन के विषय में और शुद्धनय के विषय में गुण-गुणी का भेद भी नहीं आता; उसकी विकारी पर्याय तो नहीं आती परन्तु अविकारी पर्याय — सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्दर्शन के विषय में नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो सन्तों की वाणी है, बापू! दिगम्बर सन्त अर्थात् केवली के पथानुगामी। आहाहा! केवलज्ञान के मार्ग पर चलनेवाले और केवलज्ञान लेनेवाले, एक दो भव में मोक्ष जानेवाले, उन सन्तों को करुणा का विकल्प आया तो यह शास्त्र बन गया। आहाहा!

तो कहते हैं कि ऐसे आत्मा देखो तो तेरी विकारी पर्याय में भी व्याप्त तो है। सारा द्रव्य-पर्याय देखने से तो दोनों उसके हैं परन्तु अब उसका कल्याण करने का उपाय बताना है, तो उसमें तो एक रूप त्रिकाल द्रव्य जो ध्रुव है, वह शुद्धनय ने बताया। वह द्रव्य, गुण-पर्याय में व्याप्त होने पर भी, शुद्धनय में अकेले द्रव्य को बताया। द्रव्य -गुण-पर्याय में व्याप्त अर्थात् रहनेवाला होने पर भी सम्यग्दर्शन ने अकेले त्रिकाली को बताया। त्रिकाली, वह मैं; परमात्म द्रव्य वह मैं.... यह आया न, 320 गाथा में, जयसेनाचार्य की टीका में 320 (गाथा में आता है कि) मैं तो परमात्म द्रव्य हूँ। है? 320 नहीं? व्याख्यान हो गया है।

देखो! संस्कृत टीका है (गुजराती) 'जो सकल निरावरण, अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभाससमय, अविनश्वर, शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ।' आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन का विषय, यह शुद्धनय का विषय! आहाहा! विषय अर्थात् ध्येय। आहाहा! सम्यग्दर्शन का ध्येय, ध्रुव ध्येय है। ध्रुव ध्येय है। सम्यग्दर्शन का विषय गुणगुणी भेद और पर्याय उसका विषय नहीं है। आहाहाहा! क्षायिक सम्यग्दर्शन का विषय भी ध्रुव है। क्षायिक समकित, समकित का विषय नहीं। यह तो संस्कृत टीका है। यह तो बहुत चला, यह तो तैंतालीस वर्ष उपरान्त चला था। आहाहा! भाई! इसे समझना पड़ेगा बापू! चौरासी लाख के दुःख इसने भोगे हैं। यह कल आया था न उसमें — सज्झाय में — छहढाला में, कि इसकी दुःख की भाषा / कथन करोड़ जीभ से नहीं कहा जा सकता। बापू! आहाहा! उसमें आया था। इसने दुःख भोगा है भाई! इसकी पर्याय में; संयोग का नहीं, मिथ्यात्व और राग-द्वेष के मलिन परिणाम महादुःखरूप हैं, उन्हें इसने

भोगा है। उस दु:ख की बात करोड़ों जीभ से नहीं कही जा सकती, भाई! आहाहा! अरे! तू भूल गया प्रभु तुझे, तुझे तेरी दया नहीं आती, नाथ! तू कौन है? कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? कल आया था न छहढाला में! और एक आया था — निगोद में से त्रस की पर्याय प्राप्त हो, वह चिन्तामणि रत्न जैसा है। आहाहा! त्रसपना, अभी दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय.... आहाहा! भाई! तुझे यह कठिनता से मिला, निगोद की गोद में पड़ा था, प्रभु! अनन्त काल में दु:खी (पड़ा था) आहाहा! भाई! तू बाहर निकला और अब तू.... आहाहा! जैसे वह चिन्तामणि रत्न प्राप्त हो, वैसे त्रस होता है, आहाहा! यह मनुष्यपना और इसमें यह भगवान की वाणी का योग और आहाहा! यह सब मिलने पर भी, यदि यह शुद्धनय का विषय दृष्टि में नहीं लिया तो सब निरर्थक जायेगा। आहाहा! तेरा दान, दया, मन्दिर बनाया, और करोड़ों रुपये खर्च किये और... आहाहा! यह बड़ा छब्बीस-छब्बीस लाख का मकान... और इसलिए वहाँ अन्दर धर्म हो गया... आहाहा! (ऐसा नहीं है)।

श्रोता : धर्म तो नहीं परन्तु कुछ मदद तो करेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी मदद नहीं करेगा, नुकसान करेगा। शुभभाव तो आत्मा में नुकसान करनेवाला है। कठिन बात है, बापू! वीतराग का मार्ग, आहाहा! जिनेश्वरदेव.... इन्द्र जिनका तलिया चाटे और इन्द्र जिनकी सभा में, श्वान का बच्चा जैसे बैठे, वैसे बैठता है... भाई! वह मार्ग कैसा होगा? बापू! आहाहा! वह मार्ग सुनना भी महाभाग्य हो, तब मिलता है और अन्तरपुरुषार्थ प्रगट करे तो प्रगट करे। आहाहा! यह इतने में चला, यहाँ तो अभी। आहाहा!

शुद्धनय से एकत्व में..... शुद्धनय से देखने पर एकत्व में निर्णय कराया। गुण और पर्याय की अनेकता है, वह भले उसके सत्व में हो परन्तु अब आश्रय लेने योग्य वस्तु है, वह तो त्रिकाली द्रव्य ज्ञायकभाव है। आहाहा! उसमें उसका निर्णय कराया एकत्व में। आहाहा! एकपने का अन्दर निर्णय कर, अनुभव (कर) तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा; इसके बिना सब व्यर्थ है। समझ में आये ऐसा है इसमें। आहाहा! भाषा कोई ऐसी (कठिन) नहीं है। बाबूलालजी! भाषा तो आज आपकी हिन्दी आयी।

आहाहा! अब लोग आयेंगे न, कल और परसों से, हिन्दी लोग आयेंगे न, अब तो शुरुआत हो गयी है थोड़ी-थोड़ी। आहाहा!

शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है,..... क्या है? **'पूर्णज्ञान घनस्य'** शुद्धनय से एकत्व का निर्णय कराया वह चीज क्या है? पूर्णज्ञानघन है भगवान! आहाहा...! विकार तो नहीं, परन्तु जिसमें पर्याय नहीं। आहाहा!

श्रोता : अभेदरूप से तो पर्याय है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं है। अभेद में पर्याय कैसी? पर्याय तो अभेद का विषय करती है। पर्याय अभेद को विषय करती है, उसके विषय में पर्याय नहीं है, वह तो अभी कहा — पहले वह कह गये हैं। सम्यग्दर्शन के विषय में सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं है। सब बात हो गयी है, ध्यान रखे तो सब बात साथ आती है।

श्रोता : दो बार हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो बार हुई। आहाहा! पूर्ण ज्ञानघन शुद्धनय का विषय एकत्व बताया, वह क्या चीज? आहाहा! ज्ञान की प्रधानता से कथन है, बाकी अनन्त गुण का कन्द ऐसा एकरूप (निजात्मा) आहाहा! उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्धनय का विषय है, बाकी सब व्यर्थ हैं। जब तक यह न करे, तब तक सब एक बिना की शून्य, (रण में) शोर मचाने जैसा है। समझ में आया? आहाहा! पीछे थोड़ी बात है। समय पूरा हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव)